Swami Vivekananda Advanced Journal for Research and Studies
Online Copy of Document Available on: www.svajrs.com

ISSN:2584-105X **Pg. 139-148**

घरेलू हिंसा अधिनियम 2005 और लिविंग संबंध: महिला साथी के अधिकार

गीता
शोधार्थी, एल.एल.एम., यूजीसी-नेट
विधि संकाय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
geetakm2025@gmail.com

Accepted: 16/02/2026
Published: 17/02/2026 ***DOI: http://doi.org/ 10.5281/zenodo.18667513***

सारांश

भारत में पारिवारिक एवं अंतरंग संबंधों के भीतर होने वाली हिंसा को लंबे समय तक "निजी क्षेत्र" का विषय माना जाता रहा, जिसके कारण महिलाओं के लिए त्वरित संरक्षण, सुरक्षित आवास तथा आर्थिक सहारा प्राप्त करना अत्यंत चुनौतीपूर्ण रहा। घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 (पीडब्लूडीवीए) ने घरेलू हिंसा की परिभाषा को शारीरिक क्षति तक सीमित न रखते हुए यौन, मौखिक/भावनात्मक एवं आर्थिक दुर्व्यवहार तक विस्तारित किया है, तथा न्यायिक मजिस्ट्रेट के माध्यम से नागरिक प्रकृति की शीघ्र राहतें जैसे संरक्षण आदेश, निवास आदेश, मौद्रिक राहत, अभिरक्षा आदेश और क्षतिपूर्ति प्रदान करने का वैधानिक ढांचा निर्धारित किया है। विशेष महत्व की बात यह है कि अधिनियम "घरेलू संबंध" की परिभाषा में "विवाह-स्वरूप संबंध" (विवाह की प्रकृति में संबंध) को सम्मिलित करता है, जिसके फलस्वरूप 'लिव-इन' संबंधों में रह रही महिलाओं को भी न्यायालय द्वारा विकसित मानदंडों की पूर्ति की स्थिति में कानूनी संरक्षण उपलब्ध हो सकता है। यह अध्ययन पीडब्लूडीवीए के वैधानिक प्रावधानों, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित परीक्षणों (विशेषतः वेलुसामी बनाम पटचैम्मल तथा इंद्रा सरमा बनाम वीकेवी सरमा) और निवास/राहत संबंधी न्यायशास्त्र के आधार पर 'लिव-इन' महिला साथी के अधिकारों का विश्लेषण करता है। साथ ही, नैतिकतावादी न्यायिक दृष्टिकोण की सीमाएँ, प्रमाण-संग्रह संबंधी व्यावहारिक कठिनाइयाँ, "विवाह-स्वरूप" की संकीर्ण व्याख्या तथा सामाजिक कलंक से उत्पन्न बाधाओं पर आलोचनात्मक विमर्श प्रस्तुत करते हुए समावेशी सुधार-सुझाव भी प्रस्तावित किए गए हैं।

मुख्य शब्द :- *घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005; लिव-इन संबंध; विवाह-स्वरूप संबंध; साझा गृहस्थी; भरण-पोषण; निवास-अधिकार; लैंगिक न्याय।*

1. प्रस्तावना

घरेलू हिंसा भारतीय समाज की उस संरचना से जुड़ी हुई है जिसमें लैंगिक असमानता, आर्थिक निर्भरता, पितृसत्तात्मक मूल्य, तथा परिवार-प्रतिष्ठा की संकल्पनाएँ महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को सामान्य बनाती हैं। भारत में घरेलू हिंसा के विरुद्ध राज्य की प्रारम्भिक प्रतिक्रिया दंडात्मक कानूनों जैसे भारतीय दंड संहिता की धारा 498A, दहेज निषेध कानून पर केंद्रित थी; किन्तु ये साधन पीड़िता को तत्काल सुरक्षा, निवास की गारंटी और आर्थिक राहत प्रदान करने में अपर्याप्त सिद्ध हुए। इस परिदृश्य में पीडब्लूडीवीए एक महत्त्वपूर्ण प्रगतिशील कानून के रूप में सामने आता है, जो पीड़िता-केन्द्रित बहुआयामी नागरिक राहतों की व्यवस्था करता है और घरेलू हिंसा की परिभाषा को व्यापक बनाता है। यह अधिनियम 26 अक्टूबर 2006 से प्रभावी हुआ और इसका उद्देश्य महिलाओं के संविधान-सम्मत अधिकारों विशेषतः जीवन, समानता और गरिमा की व्यावहारिक सुरक्षा सुनिश्चित करना है।

समकालीन भारत में अंतरंग संबंधों की प्रकृति बदल रही है। शहरीकरण, शिक्षा, आर्थिक गतिशीलता और सामाजिक मानदंडों में परिवर्तन ने विवाहेतर सह-आवास अर्थात 'लिव-इन' संबंधों की दृश्यता बढ़ाई है। ऐसी स्थितियों में महिलाएँ दोहरी असुरक्षा का अनुभव करती हैं (i) हिंसा, आर्थिक नियंत्रण, यौन शोषण, मनोवैज्ञानिक दबाव जैसे जोखिम, जो विवाह में भी पाए जाते हैं; तथा (ii) कानून द्वारा विवाह-आधारित अधिकारों के अभाव के कारण सुरक्षा, वैधता तथा राहत की सीमित उपलब्धता। इस संदर्भ में केंद्रीय प्रश्न यह है कि पीडब्लूडीवीए की "घरेलू संबंध" की परिभाषा 'लिव-इन' महिला साथी को किन परिस्थितियों में संरक्षण प्रदान करती है, और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विकसित "विवाह-स्वरूप संबंध" के मानदंड इस संरक्षण को किस प्रकार आकार देते हैं।

1.1 अनुसंधान-उद्देश्य

1. पीडब्लूडीवीए, 2005 की प्रासंगिक परिभाषाओं और राहत-प्रावधानों का 'लिव-इन' संबंधों के संदर्भ में विश्लेषण करना।

2. "विवाह की प्रकृति में संबंध" की व्याख्या के लिए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा विकसित मानदंडों विशेषतः वेलुसामी और इंद्र सरमा का आलोचनात्मक अध्ययन करना।

3. 'लिव-इन' महिला साथी के अधिकारों निवास, संरक्षण, मौद्रिक राहत/भरण-पोषण, क्षतिपूर्ति की व्यावहारिक चुनौतियों (प्रमाण, कलंक, प्रक्रिया) का विश्लेषण करना।

4. अधिकार-आधारित और समावेशी सुधार के लिए नीति-स्तरीय सिफारिशें प्रस्तुत करना।

1.2 शोध-पद्धति

यह शोध सैद्धांतिक कानूनी अनुसंधान की पद्धति पर आधारित है। प्राथमिक स्रोतों में पीडब्लूडीवीए, 2005 का वैधानिक पाठ, घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण नियम, 2006, तथा सर्वोच्च/उच्च न्यायालयों के महत्त्वपूर्ण निर्णय शामिल हैं। द्वितीयक स्रोतों में विधि-साहित्य, नीति-रिपोर्टें, और समाजशास्त्रीय अध्ययन सम्मिलित हैं। अध्ययन पीडब्लूडीवीए के "नागरिक राहत + अर्द्ध-आपराधिक प्रवर्तन" की मिश्रित प्रकृति का विश्लेषण करता है और 'लिव-इन' संबंधों की न्यायिक व्याख्या में उभरती प्रवृत्तियों को समझने का प्रयास करता है।

2. पीडब्लूडीवीए, 2005: वैधानिक ढांचा और मूल अवधारणाएँ

पीडब्लूडीवीए का वैधानिक ढांचा पाँच प्रमुख अवधारणाओं पर आधारित है "पीड़ित/प्रभावित व्यक्ति", "घरेलू संबंध", "साझा गृहस्थी", "प्रतिवादी" तथा "घरेलू हिंसा" की व्यापक परिभाषा।

2.1 "पीड़ित/प्रभावित व्यक्ति" और समावेशन का तर्क

धारा 2(a) के अनुसार "पीड़िता" वह महिला है जो प्रतिवादी के साथ वर्तमान या पूर्व घरेलू संबंध में रही है और हिंसा का आरोप लगाती है। "is, or has been" शब्दावली का आशय यह है कि संबंध के समाप्त हो जाने के बाद भी महिला राहतें मांग सकती है विशेषतः निवास, आर्थिक सहायता, स्त्रीधन की वापसी आदि के संदर्भ में। यह अधिनियम की लैंगिक-न्याय उन्मुखता को पुष्ट करता है।

2.2 "घरेलू संबंध" और विवाह-स्वरूप संबंध

धारा 2(f) "घरेलू संबंध" को ऐसे संबंध के रूप में परिभाषित करता है जो रक्त, विवाह या "विवाह-स्वरूप संबंध" के आधार पर स्थापित हो और जिसमें पक्षकार साझा गृहस्थी में साथ रहते हों या रह चुके हों। अधिनियम सीधे "लिव-इन" शब्द का उपयोग नहीं करता, परन्तु "विवाह-स्वरूप संबंध" के सिद्धांत के माध्यम से 'लिव-इन' साथियों को संरक्षण प्रदान करने की वैधानिक क्षमता उपलब्ध कराता है। न्यायालयों ने इस अवधारणा को विस्तार देते हुए परीक्षण विकसित किए हैं जैसे साझा जीवन का स्थायित्व, वैवाहिक समानता, सामाजिक प्रस्तुति, आर्थिक परस्परता आदि।

2.3 "साझा गृहस्थी" और निवास-अधिकार

धारा 2(s) "साझा परिवार" को व्यापक अर्थ में परिभाषित करता है ऐसा घर जिसमें पीड़िता घरेलू संबंध की अवधि में रही हो, चाहे उसका स्वामित्व किसी भी पक्ष के नाम हो या संयुक्त परिवार की संपत्ति हो। धारा 17 पीड़िता को साझा गृहस्थी में रहने का वैधानिक अधिकार देती है और धारा 19

निवास आदेश जारी करने का तंत्र प्रदान करती है। 'लिव-इन' संबंधों में यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि क्या उस घर को "साझा गृहस्थी" साबित किया जा सकता है।

2.4 "प्रतिवादी" और रिश्तेदारों के विरुद्ध कार्रवाई

धारा 2(q) का प्रतिबंध महत्वपूर्ण है विवाह-स्वरूप संबंध में रह रही महिला पति/पुरुष साथी के रिश्तेदारों के विरुद्ध भी शिकायत कर सकती है, यदि वे हिंसा में सहभागी हों। यह प्रावधान 'लिव-इन' व्यवस्था में भी महिलाओं को व्यापक सुरक्षा प्रदान करता है, बशर्ते घरेलू संबंध और साझा गृहस्थी की शर्तें पूरी हों।

2.5 घरेलू हिंसा की व्यापक परिभाषा

धारा 3 घरेलू हिंसा को शारीरिक हिंसा से आगे बढ़ाकर यौन, आर्थिक तथा मौखिक/भावनात्मक दुर्व्यवहार को भी सम्मिलित करता है। 'लिव-इन' संबंधों में अक्सर आर्थिक नियंत्रण, प्रतिष्ठा-आधारित धमकी, या निवास से निष्कासन जैसी स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं जो इस अधिनियम की परिधि में स्पष्टतः संरक्षित हैं।

3. 'लिव-इन' संबंधों की विधिक स्थिति: न्यायालयों की संवैधानिक और सामाजिक दृष्टि

'लिव-इन' संबंधों को भारतीय विधि-व्यवस्था ने समग्र रूप से कभी भी "विवाह के पूर्ण समकक्ष" नहीं माना है; तथापि, न्यायालयों ने निरन्तर यह रेखांकित किया है कि स्वैच्छिक सहमति के आधार पर दो वयस्कों द्वारा किया गया सह-आवास अपने आप में अपराध नहीं है। उदाहरण के रूप में एस. खुशबू बनाम कन्नियाम्मल (2010) में सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट संकेत दिया कि केवल नैतिक आधार पर सह-आवास को अपराध घोषित नहीं किया जा सकता और न ही ऐसे संबंधों में रहने वाली महिला या पुरुष को आपराधिक अभियोजन का निशाना बनाया जाना चाहिए।

यह पृष्ठभूमि घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 (घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005) के संदर्भ में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यदि सह-आवास को ही "अवैध" या "अनैतिक" मानकर न्यायालय संरक्षण प्रदान करने से इंकार कर दें, तो अधिनियम का मूल कल्याणकारी उद्देश्य अर्थात हिंसा से सुरक्षा और प्रभावी राहत व्यावहारिक रूप से निष्प्रभावी हो सकता है।

3.1 'लिव-इन' संबंध बनाम "विवाह-स्वरूप संबंध": श्रेणीकरण की समस्या

"लिव-इन" एक व्यापक छत्र-शब्द है, जिसके भीतर अनेक प्रकार की वास्तविक अवस्थाएँ आती हैं जैसे अल्पकालिक सह-आवास, दीर्घकालिक एवं परस्पर निर्भरता वाली घरेलू साझेदारी, केवल "साथ रहना" या फिर डेटिंग के दौरान अस्थायी रूप से साथ ठहरना इत्यादि। घरेलू हिंसा अधिनियम ने इन सभी प्रकार के सह-आवास को स्वतः अपनी परिधि में नहीं लिया, बल्कि "विवाह-स्वरूप संबंध" (विवाह की प्रकृति में संबंध) की श्रेणी के माध्यम से चयनात्मक रूप से उन संबंधों को सम्मिलित किया जो कुछ निश्चित गुणों के आधार पर विवाह के समान माने जा सकते हैं।

फलस्वरूप, न्यायालयों के सामने यह सतत प्रश्न उपस्थित होता है कि किसी भी दावे में उल्लिखित सह-आवास वास्तव में "विवाह-स्वरूप" है या केवल अस्थायी/अनौपचारिक संग-साथ। यह श्रेणीकरण मात्र तकनीकी नहीं, बल्कि अधिकार-निर्धारण का आधार बन जाता है क्योंकि यदि संबंध "विवाह-स्वरूप" नहीं माना जाएगा, तो महिला साथी घरेलू हिंसा अधिनियम के तहत अनेक महत्त्वपूर्ण राहतों से वंचित रह सकती है।

3.2 "असामान्य/अपरंपरागत परिवार" और कल्याणकारी कानूनों का दायरा

हाल के वर्षों में न्यायिक विमर्श में यह स्वीकारोक्ति उभरकर सामने आई है कि "परिवार" की पारंपरिक परिभाषा जिसे केवल विवाह, जैविक माता-पिता और बच्चों तक सीमित समझा जाता रहा समाज में विद्यमान विविध वास्तविकताओं को प्रतिबिंबित नहीं करती। दीपिका सिंह बनाम केंद्रीय प्रशासनिक न्यायाधिकरण (2022) में सर्वोच्च न्यायालय ने इस तथ्य को स्पष्ट रूप से माना कि परिवार की ऐसी अनेक संरचनाएँ हैं जिन्हें "असामान्य" या "अप्रचलित" (atypical) कहा जा सकता है, किन्तु संवैधानिक दृष्टि से वे समान संरक्षण और कल्याणकारी योजनाओं के लाभ की अधिकारी हैं।

यद्यपि यह निर्णय सीधे-सीधे घरेलू हिंसा अधिनियम या 'लिव-इन' संबंधों पर केंद्रित नहीं था, फिर भी इसका संवैधानिक संदेश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कल्याणकारी विधानों की व्याख्या समाज की वास्तविक स्थितियों को ध्यान में रखकर की जानी चाहिए, न कि संकीर्ण नैतिक दृष्टिकोण के आधार पर। इस प्रकार, परिवार की बहुविध संरचनाओं को स्वीकार करने वाला यह दृष्टिकोण 'लिव-इन' संबंधों में रहने वाली महिलाओं के संरक्षण हेतु अधिक समावेशी व्याख्या का मार्ग प्रशस्त करता है।

4. घरेलू हिंसा अधिनियम के अंतर्गत "विवाह-स्वरूप संबंध" का न्यायिक परीक्षण: प्रमुख निर्णय

घरेलू हिंसा अधिनियम में प्रयुक्त "विवाह की प्रकृति में संबंध" की अवधारणा का वास्तविक अर्थ-निर्धारण मुख्यतः सर्वोच्च न्यायालय की व्याख्याओं के माध्यम से विकसित हुआ है। दो निर्णय विशेष रूप से आधार-स्तम्भ के रूप में माने जाते हैं

वेलुसामी बनाम पटचैम्मल (2010) तथा इंद्रा सरमा बनाम वीकेवी सरमा (2013)।

4.1 वेलुसामी बनाम पटचैम्मल (2010): न्यूनतम मानदंड और "सामाजिक प्रस्तुति"

वेलुसामी प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि "विवाह-स्वरूप संबंध" को हर प्रकार के सह-आवास से अलग पहचाना जाना चाहिए। न्यायालय ने कुछ संकेतकों (indicia) का उल्लेख किया, जिनके आधार पर संबंध को विवाह-स्वरूप माना जा सकता है, जैसे

1. दोनों पक्ष विधि के अनुसार विवाह-योग्य हों;

2. दोनों वास्तविक रूप से कुछ अवधि तक साथ रह रहे हों;

3. वे समाज के समक्ष अपने को पति-पत्नी के रूप में प्रस्तुत करते हों;

4. संबंध केवल क्षणिक न होकर अपेक्षाकृत स्थिर एवं दीर्घकालिक हो ।

न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि केवल "रखैल" जैसी स्थिति, आकस्मिक शारीरिक संबंध या "वन-नाइट स्टैंड" जैसी परिस्थितियाँ घरेलू हिंसा अधिनियम के अंतर्गत संरक्षण का आधार नहीं बन सकतीं।

यह परीक्षण कई दृष्टियों से संरक्षकवादी प्रतीत होता है, क्योंकि "समाज के समक्ष पति-पत्नी की तरह प्रस्तुत होना" भारतीय सामाजिक परिवेश में अक्सर स्वयं एक जोखिम बन जाता है। अनेक 'लिव-इन' संबंध सामाजिक कलंक, परिवार के विरोध या हिंसा के भय के कारण सार्वजनिक रूप से स्वीकार नहीं किए जाते। ऐसे में, यदि महिला स्वयं की सुरक्षा के लिए संबंध को गोपनीय रखती है, तो यही गोपनीयता बाद में उसके अधिकार-दावे के विरुद्ध प्रमाण के रूप में उपयोग की जा सकती है। इस प्रकार, परीक्षण का यह तत्व व्यवहारिक रूप से कमज़ोर पक्ष (महिला) पर अधिक बोझ डालता है।

4.2 इंद्रा सरमा बनाम वीकेवी सरमा (2013): वर्गीकरण, कारक और सीमाएँ

इंद्रा सरमा निर्णय में न्यायालय ने 'लिव-इन' संबंधों के विविध प्रकारों का वर्गीकरण करते हुए यह स्वीकार किया कि सभी प्रकार के सह-आवास को एक ही श्रेणी में रखना संभव नहीं। न्यायालय ने "विवाह-स्वरूप संबंध" की पहचान के लिए कई कारकों की सूची दी, जैसे साथ रहने की अवधि, साझा गृहस्थी की प्रकृति, आर्थिक व्यवस्था और परस्पर निर्भरता, सामाजिक मान्यता, बच्चों की योजना अथवा वास्तविक जन्म, तथा पक्षकारों के आपसी दायित्वों की दीर्घकालिकता।

साथ ही, न्यायालय ने यह भी इंगित किया कि यदि कोई पुरुष पहले से वैवाहिक बंधन में बँधा हो और वह किसी अन्य महिला के साथ 'लिव-इन' संबंध में रहे, तो ऐसी स्थिति को "विवाह-स्वरूप" मानने में कठिनाइयाँ उत्पन्न होती हैं। न्यायालय ने ऐसी परिस्थितियों में संरक्षण देने के संबंध में सीमित दृष्टिकोण अपनाया, यह कहते हुए कि विधायिका यदि आवश्यक समझे तो विशेष प्रावधान कर सकती है।

यह निर्णय एक प्रकार से "विधिक रूप से वैध/नैतिक" और "कानूनी दृष्टि से संदिग्ध" संबंधों के बीच भेद रेखांकित करता है। किन्तु यदि कोई महिला किसी पुरुष के पूर्वविवाह या वैवाहिक स्थिति से अनभिज्ञ हो, अथवा वह सामाजिक-आर्थिक निर्भरता की स्थिति में संबंध में रह रही हो, तो केवल पुरुष के पूर्वविवाह के कारण उसे हिंसा के समय संरक्षण से वंचित करना घरेलू हिंसा अधिनियम के कल्याणकारी उद्देश्य और लैंगिक-न्याय की भावना के विरुद्ध प्रतीत होता है। न्यायालय ने भले ही विधायी सुधार की आवश्यकता का उल्लेख किया हो, पर व्यवहार में इस वर्ग की महिलाओं के लिए संरक्षण अनिश्चित और न्यायिक विवेक पर अत्यधिक निर्भर बना रहता है।

4.3 परीक्षणों का संचयी प्रभाव

वेलुसामी और इंद्र सरमा दोनों निर्णयों के संयुक्त अध्ययन से एक समग्र मानक उभरता है

• प्रत्येक 'लिव-इन' संबंध स्वतः ही घरेलू हिंसा अधिनियम की परिधि में नहीं आता;

• महिला को यह सिद्ध करना होता है कि

1. वास्तविक सह-आवास रहा है;

2. पक्षकारों के बीच घरेलू साझेदारी और परस्पर आर्थिक-सामाजिक निर्भरता विद्यमान थी;

3. संबंध में विवाह-समान स्थिरता तथा दीर्घकालिकता थी।

एक ओर यह दृष्टिकोण कानून के संभावित दुरुपयोग की आशंकाओं को शमन करने का प्रयत्न करता है; दूसरी ओर यह महिला के अधिकारों को उच्च स्तर के प्रमाण और न्यायालयी विवेक पर निर्भर बनाकर मुकदमेबाजी की समय, धन और मानसिक लागत को बढ़ा देता है।

5. 'लिव-इन' महिला साथी के घरेलू हिंसा अधिनियम-अधिकार: प्रकृति, दायरा और सीमाएँ

घरेलू हिंसा अधिनियम के अंतर्गत महिला साथी के अधिकारों को मुख्यतः "राहतों" के रूप में समझा जाना चाहिए। अधिनियम की रचना का मूल उद्देश्य दंडात्मक सजा देना नहीं, बल्कि हिंसा को रोकना और पीड़िता-केन्द्रित पुनर्स्थापनात्मक राहत प्रदान करना है। 'लिव-इन' संबंधों में

रहने वाली महिलाओं के लिए ये राहतें तब उपलब्ध होती हैं जब वे "घरेलू संबंध" और "विवाह-स्वरूप संबंध" के न्यूनतम मानदंडों को न्यायालय के समक्ष सिद्ध कर पाती हैं।

5.1 धारा 18: संरक्षण आदेश

जब मजिस्ट्रेट प्रथमदृष्टया यह संतोष प्राप्त कर लेते हैं कि घरेलू हिंसा हुई है या उसका गंभीर आशंका-जनक जोखिम है, तो धारा 18 के अंतर्गत वे प्रतिवादी के विरुद्ध संरक्षण आदेश जारी कर सकते हैं जैसे पीड़िता के साथ किसी भी प्रकार की हिंसा, धमकी, उत्पीड़न, संपर्क, पीछा करना, या उसके कार्यस्थल और निवास स्थान के निकट आने से रोकना।

वैकल्पिक आवास की व्यवस्था कराने का निर्देश दे सकते हैं।

'लिव-इन' महिला साथी के लिए इसका अर्थ यह है कि यदि वह यह सिद्ध कर सके कि संबंधित घर वास्तव में दोनों का "साझा गृहस्थी" था, तो उसे बेदखल किए जाने के विरुद्ध विधिक संरक्षण मिल सकता है।

यह अधिकार तभी वास्तविक लाभ में बदल सकता है जब महिला सह-आवास और साझा गृहस्थी का प्रमाण प्रस्तुत कर सके उदाहरणतः किरायानामा, दोनों के नाम पर बिजली/पानी के बिल, संयुक्त बैंक-खाता या घरेलू खर्च, पड़ोसियों की गवाही आदि। चूँकि 'लिव-इन' संबंध प्रायः

चित्र 1: पीडब्लूडीवीए के अंतर्गत विभिन्न राहतों का उपयोग – वैवाहिक और 'लिव-इन' संबंधों के मामलों की अवधारणात्मक तुलना

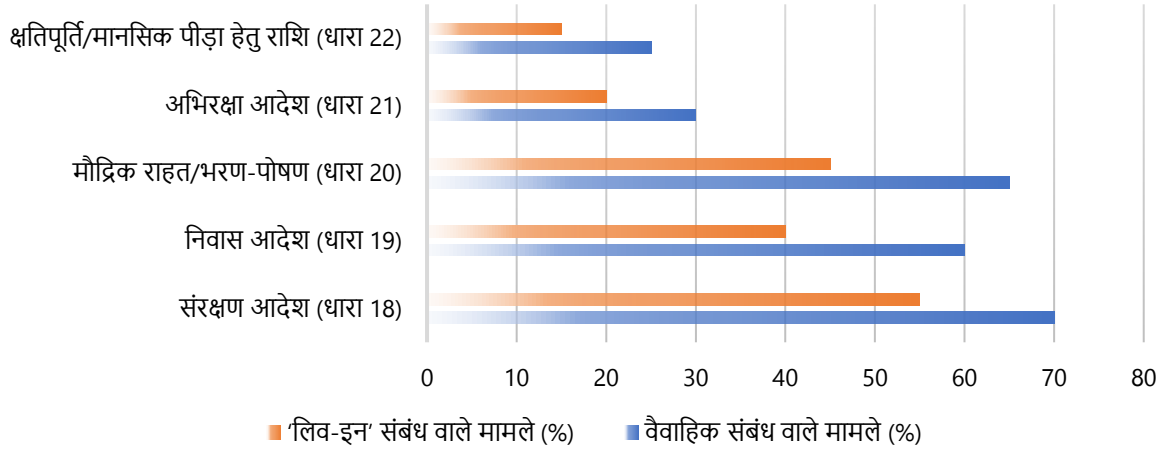

'लिव-इन' संदर्भ में यह प्रावधान विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि संबंध टूटने के बाद बहुत-सी महिलाएँ पीछा करने, फोन-कॉल/संदेशों के माध्यम से धमकी, निजी तस्वीरों अथवा गोपनीय जानकारी को सार्वजनिक करने की धमकी आदि का सामना करती हैं। ये सभी स्थितियाँ घरेलू हिंसा की व्यापक परिभाषा विशेषतः भावनात्मक/मनोवैज्ञानिक तथा आर्थिक दुर्व्यवहार के अंतर्गत आ सकती हैं।

5.2 धारा 17: निवास का अधिकार और धारा 19: निवास आदेश

घरेलू हिंसा अधिनियम का एक केन्द्रीय नवोन्मेष "साझा गृहस्थी में रहने का अधिकार" है। धारा 17 यह स्पष्ट करती है कि किसी भी योग्य महिला को, जो घरेलू संबंध में रही हो, साझा गृहस्थी में रहने का अधिकार है, चाहे उस घर का स्वामित्व उसके नाम पर न हो। धारा 19 के अंतर्गत मजिस्ट्रेट प्रतिवादी को पीड़िता को घर से निकालने से रोक सकते हैं, उसे पुनः उसी घर में रहने देने का आदेश दे सकते हैं या

औपचारिकता-रहित होते हैं, इसलिए दस्तावेजी प्रमाण का अभाव अधिकार-प्राप्ति में बड़ी बाधा बन जाता है।

5.3 धारा 20: मौद्रिक राहत और भरण-पोषण

धारा 20 के अंतर्गत मजिस्ट्रेट पीड़िता के स्वास्थ्य-खर्च, जीवन-यापन, बच्चों की शिक्षा और देखभाल, तथा हिंसा से उत्पन्न आर्थिक क्षति की पूर्ति के लिए मौद्रिक राहत प्रदान कर सकते हैं। यह प्रावधान 'लिव-इन' महिला साथी के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वैवाहिक दर्जे के अभाव में वह अक्सर पारंपरिक भरण-पोषण प्रावधानों जैसे दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 125 के तहत अस्पष्ट स्थिति में रहती है।

ललिता टोप्पो बनाम झारखंड राज्य (2019) में सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि भले ही कोई महिला लोकप्रिय अर्थ में "कानूनी पत्नी" न हो, फिर भी यदि वह घरेलू हिंसा अधिनियम के तहत "पीड़िता" की परिभाषा में आती है, तो उसे इस अधिनियम के तहत भरण-पोषण और अन्य मौद्रिक राहत का दावा करने का अधिकार है। यह निर्णय

'लिव-इन' महिला साथियों के लिए अधिनियम के महत्व को और अधिक पुष्ट करता है।

5.4 धारा 22: क्षतिपूर्ति

घरेलू हिंसा केवल आर्थिक क्षति या शारीरिक चोट तक सीमित नहीं रहती; यह आत्मसम्मान-भंग, मानसिक पीड़ा, सामाजिक अपमान और दीर्घकालिक मनोवैज्ञानिक आघात का भी कारण बनती है। धारा 22 न्यायालय को यह शक्ति देती है कि वह पीड़िता को मानसिक पीड़ा, अत्याचार, अपमान, चिकित्सा-व्यय एवं अन्य क्षतियों के लिए क्षतिपूर्ति राशि दिला सके।

'लिव-इन' संदर्भ में, जहाँ महिला को हिंसा के साथ-साथ सामाजिक कलंक और पारिवारिक अस्वीकृति का भी बोझ ढोना पड़ता है, क्षतिपूर्ति प्रावधान सैद्धान्तिक रूप से अत्यंत उपयोगी हो सकता है। व्यवहार में, हालांकि, न्यायालयों द्वारा निर्धारित राशि कई बार प्रतीकात्मक स्तर पर सीमित रह जाती है, जिससे इस प्रावधान की परिवर्तनकारी क्षमता पूर्ण रूप से सामने नहीं आ पाती।

5.5 धारा 21: अभिरक्षा आदेश

यदि 'लिव-इन' संबंध से बच्चे उत्पन्न हुए हों, तो धारा 21 के अंतर्गत मजिस्ट्रेट बच्चों की अंतरिम अभिरक्षा माँ को देने का आदेश दे सकते हैं, साथ ही प्रतिवादी के बच्चों से मिलने के अधिकार पर युक्तिसंगत प्रतिबंध लगा सकते हैं। यह विशेष रूप से उन स्थितियों में महत्वपूर्ण है जब प्रतिवादी बच्चे को नियंत्रण, धमकी या दबाव के साधन के रूप में उपयोग करता है।

5.6 धारा 23: अंतरिम और एकपक्षीय आदेश

घरेलू हिंसा से संबंधित मामलों में तात्कालिकता का तत्व अत्यंत निर्णायक होता है। धारा 23 मजिस्ट्रेट को यह अधिकार देती है कि वे बिना विस्तृत साक्ष्य-रिकॉर्ड के भी, शपथ-पत्र तथा प्रारम्भिक सामग्री के आधार पर अंतरिम या एकपक्षीय (ex parte) आदेश जारी कर सकें।

'लिव-इन' महिला साथी के लिए यह प्रावधान तब जीवन-रक्षक सिद्ध हो सकता है जब उसे तत्काल घर से निकाले जाने, जान-माल की सुरक्षा पर खतरा, या त्वरित आर्थिक सहायता की आवश्यकता हो।

5.7 धारा 26: "अन्य कार्यवाहियों" में भी राहत का दावा

धारा 26 यह प्रावधान करती है कि घरेलू हिंसा अधिनियम के तहत उपलब्ध राहतें केवल इसी अधिनियम की कार्यवाही तक सीमित नहीं हैं; पीड़िता परिवार न्यायालय, दीवानी अदालत या किसी अन्य सक्षम मंच पर चल रही कार्यवाहियों में भी इन राहतों का दावा कर सकती है।

यह व्यवस्था 'लिव-इन' महिला साथी के लिए मुकदमेबाजी की जटिलता को कुछ हद तक कम कर सकती है, क्योंकि वह अलग-अलग मंचों पर अलग-अलग कार्यवाहियाँ चलाने के स्थान पर, जहाँ संभव हो, एक ही मंच पर बहु-राहत प्राप्त करने का प्रयास कर सकती है।

5.8 धारा 36: अन्य कानूनों के साथ समवर्ती उपाय

धारा 36 यह स्पष्ट करती है कि घरेलू हिंसा अधिनियम अन्य किसी भी प्रचलित कानून के अधिकारों या उपायों को क्षीण नहीं करता; अर्थात यह अधिनियम अन्य विधियों के साथ "समवर्ती" रूप से लागू होता है। इस सिद्धान्त का अर्थ यह है कि पीड़िता चाहे तो दण्ड प्रक्रिया संहिता, व्यक्तिगत विधियों (personal laws), दीवानी मुकदमों या किसी अन्य विधिक मार्ग के साथ-साथ घरेलू हिंसा अधिनियम के तहत भी राहत माँग सकती है।

'लिव-इन' महिला साथी के लिए यह विशेष रूप से लाभप्रद है, क्योंकि उसके पास अपने अधिकारों की रक्षा के लिए बहु-आयामी रणनीतियाँ अपनाने का अवसर रहता है बशर्ते वह न्यायालय के समक्ष अपने संबंध और पीड़ित-स्थिति को पर्याप्त रूप से सिद्ध कर सके।

6. 'लिव-इन' संदर्भ में घरेलू हिंसा अधिनियम (पीडब्लूडीवीए) की प्रक्रियात्मक–प्रमाणात्मक चुनौतियाँ

घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 (पीडब्लूडीवीए) काग़ज़ पर तो महिला को अनेक अधिकार और राहतें प्रदान करता है, किन्तु इन अधिकारों की वास्तविक प्राप्ति "कानून–समाज–प्रक्रिया" की त्रिवेणी पर निर्भर करती है। 'लिव-इन' संबंधों के मामले में यह त्रिवेणी कई बार और अधिक जटिल हो जाती है, क्योंकि महिला को न केवल हिंसा सिद्ध करनी होती है, बल्कि पहले अपने संबंध की प्रकृति को ही "घरेलू संबंध" और "विवाह-स्वरूप संबंध" के रूप में साबित करना पड़ता है।

6.1 घरेलू संबंध और सह-आवास का प्रमाण

"घरेलू संबंध" सिद्ध करने के लिए पीड़िता को यह प्रदर्शित करना होता है कि वह और प्रतिवादी कुछ अवधि तक "साझा गृहस्थी" में साथ रहे हैं और उनका संबंध विवाह की प्रकृति में संबंध की श्रेणी में आता है। 'लिव-इन' संदर्भ में व्यवहारिक रूप से प्रायः निम्न स्थितियाँ दिखाई देती हैं

• किरायानामा केवल पुरुष साथी के नाम पर होना;

• बिजली, पानी, गैस आदि के बिल अलग-अलग नामों पर होना;

• महिला द्वारा अपने आधिकारिक दस्तावेज़ों (आधार, मतदाता पहचान-पत्र, बैंक खाते) में पता अपडेट न कर पाना;

• परिवार/समाज के विरोध अथवा कलंक के भय से संबंध को सार्वजनिक न किया जाना।

इन सब कारणों से सह-आवास का दस्तावेजी प्रमाण जुटाना कठिन हो जाता है। फलस्वरूप, न्यायालय कभी-कभी "यथोचित संदेह" के आधार पर यह कह सकते हैं कि घरेलू संबंध सिद्ध नहीं हुआ, और इस आधार पर महिला को पीडब्लूडीवीए के संरक्षण से बाहर रख देते हैं। यह स्थिति कल्याणकारी कानून की मूल भावना अर्थात हिंसा-पीड़ित महिला की प्रभावी सुरक्षा के विपरीत मानी जा सकती है।

6.2 "सामाजिक प्रस्तुति" बनाम निजीपन/गोपनीयता

वेलुसामी बनाम पटचैम्मल जैसे निर्णयों में "पति-पत्नी के रूप में पकड़े हुए" अर्थात समाज के समक्ष स्वयं को पति-पत्नी की तरह प्रस्तुत करने को एक महत्त्वपूर्ण संकेतक माना गया । परन्तु भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में 'लिव-इन' संबंध को सार्वजनिक रूप से स्वीकार करना कई बार स्वयं एक जोखिम है परिवार से निष्कासन, सामाजिक बहिष्कार,

चित्र 2: पीडब्लूडीवीए मामलों में प्रमाण-सम्बन्धी प्रमुख बाधाएँ – विवाहित और 'लिव-इन' महिला साथियों की तुलनात्मक स्थिति

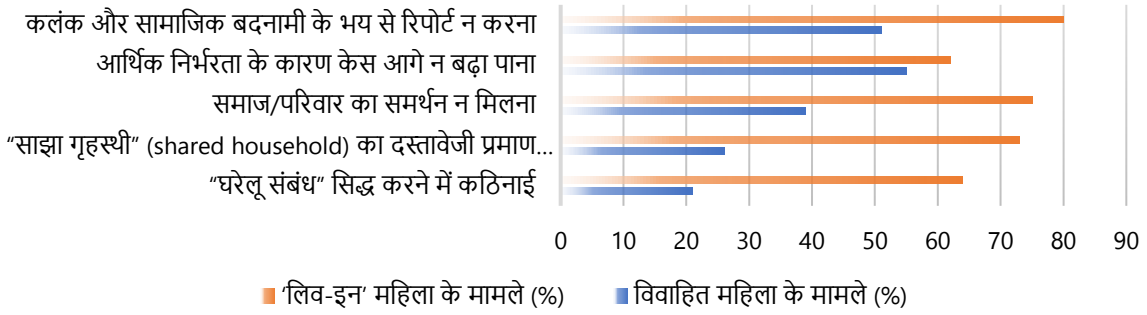

मानहानि, यहाँ तक कि शारीरिक हिंसा तक की आशंका रहती है।

ऐसी परिस्थितियों में महिला द्वारा संबंध को निजी रखना कई बार उसकी "सुरक्षा-रणनीति" (safety strategy) होती है, न कि इस बात का प्रमाण कि संबंध सतही या अस्थायी है। लेकिन जब वही महिला बाद में घरेलू हिंसा अधिनियम के अंतर्गत संरक्षण की माँग करती है, तो उसी गोपनीयता को न्यायालय "विवाह-स्वरूप" संबंध न होने के संकेत के रूप में देख सकते हैं। यह एक प्रकार का संरचनात्मक विरोधाभास (structural paradox) है जहाँ सामाजिक कलंक से बचने की रणनीति, कानून के अंतर्गत अधिकार प्राप्त करने में बाधा बन जाती है।

6.3 प्रक्रिया का मिश्रित स्वरूप और न्याय तक पहुँच

घरेलू हिंसा अधिनियम के तहत कार्यवाही न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष चलती है और सामान्यतः दण्ड प्रक्रिया संहिता (CrPC) की प्रक्रियात्मक रूपरेखा का अनुसरण करती है, जबकि अधिनियम के अंतर्गत दी जाने वाली अधिकांश राहतें मूलतः नागरिक प्रकृति (civil in nature) की हैं। सर्वोच्च न्यायालय ने भी यह स्वीकार किया है कि डीवी अधिनियम की कार्यवाहियाँ "मुख्य रूप से नागरिक" (predominantly civil) स्वरूप रखती हैं, यद्यपि अधिनियम की धारा 31 के अंतर्गत आदेश के उल्लंघन को आपराधिक अपराध बनाया गया है।

इस मिश्रित स्वरूप में

- पुलिस,
- संरक्षण अधिकारी (Protection Officer),
- सेवा प्रदाता (Service Providers), और
- न्यायालय

इन सभी की समन्वित भूमिका अत्यंत आवश्यक हो जाती है। तथापि, विभिन्न राज्यों में संरक्षण अधिकारियों की अपर्याप्त नियुक्ति, प्रशिक्षण की कमी, और सेवा प्रदाताओं की असमान उपलब्धता की समस्याएँ बार-बार रेखांकित की गई हैं। परिणामस्वरूप, पीडब्लूडीवीए का लाभ भूगोल, वर्ग और सामाजिक पूँजी के अनुसार असमान रूप में वितरित होता है, और 'लिव-इन' संबंधों में रहने वाली महिलाएँ, जो पहले से ही सामाजिक रूप से अधिक हाशिए पर होती हैं, न्याय तक पहुँच में अतिरिक्त बाधाओं का सामना करती हैं।

6.4 सामाजिक कलंक और रिपोर्टिंग–डिटरेंस

घरेलू हिंसा के स्वास्थ्य और सामाजिक परिणामों पर किए गए शोध यह दिखाते हैं कि निरन्तर हिंसा महिलाओं के शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य, आत्मसम्मान और

सामाजिक भागीदारी पर गहरा प्रभाव डालती है। रिपोर्टिंग के निर्णय में कलंक, आर्थिक निर्भरता, परिवार के टूटने का भय, बच्चों की चिंता और प्रतिशोध की आशंका जैसे कारक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

'लिव-इन' संबंधों में यह कलंक और अधिक तीक्ष्ण हो सकता है, क्योंकि समाज और कभी-कभी राज्य–संस्थाएँ भी महिला को "पत्नी नहीं" मानकर उसका नैतिक अवमूल्यन कर देती हैं। इससे पुलिस, परिवार और समुदाय सभी स्तरों पर समर्थन की संभावना घट जाती है।

राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5) आधारित अध्ययनों से यह संकेत मिलता है कि भारत में एक बड़ा प्रतिशत महिलाएँ जीवनकाल में शारीरिक या यौन हिंसा का अनुभव करती हैं। यह तथ्य घरेलू हिंसा अधिनियम जैसे संरक्षण-कानूनों की नीतिगत आवश्यकता को पुष्ट करता है, और यह भी दिखाता है कि रिपोर्ट किए गए मामलों से कहीं अधिक महिलाएँ "निम्न-दृश्यता" (under-reporting) की स्थिति में हिंसा सहन कर रही होती हैं विशेषकर वे, जिनके संबंधों की सामाजिक वैधता ही प्रश्नांकित हो।

7. आलोचनात्मक विमर्श: पीडब्लूडीवीए, नैतिकता और समावेशी न्याय

घरेलू हिंसा अधिनियम का घोषित उद्देश्य अधिकार-आधारित सुरक्षा और समुचित राहत प्रदान करना है। तथापि, "विवाह-स्वरूप संबंध" की न्यायिक कसौटी कई बार ऐसे नैतिक फिल्टर का रूप ले लेती है, जो यह परखती है कि सम्बन्ध "कितना वैवाहिक जैसा" या "कितना सामाजिक रूप से स्वीकार्य" है, बजाय इसके कि हिंसा और शक्ति-असमानता की वास्तविकता पर केंद्रित रहे।

7.1 क्या "विवाह-स्वरूप" परीक्षण लैंगिक न्याय का साधन है या बाधा?

समर्थक पक्ष यह तर्क देता है कि यदि बिना किसी फिल्टर के हर प्रकार के सह-आवास को पीडब्लूडीवीए के अंतर्गत शामिल कर लिया जाए, तो कानून के दुरुपयोग की आशंका बढ़ सकती है। अतः "विवाह की प्रकृति में संबंध" का परीक्षण आवश्यक है, ताकि केवल वे संबंध शामिल हों जिनमें वास्तविक घरेलू साझेदारी और दीर्घकालिक दायित्व मौजूद हों।

इसके विपरीत, आलोचनात्मक दृष्टिकोण यह कहता है कि घरेलू हिंसा का प्रश्न मूलतः "रिश्ते की नैतिक वैधता" से नहीं, बल्कि "असमान शक्ति-संतुलन, निर्भरता और हिंसा" से जुड़ा है। यदि कोई महिला किसी भी प्रकार के अंतरंग संबंध में रहते हुए शारीरिक, यौन, आर्थिक या भावनात्मक हिंसा का शिकार हो रही है, तो उसके संरक्षण का अधिकार इस बात पर निर्भर नहीं होना चाहिए कि समाज उसे "कानूनी पत्नी" मानता है या नहीं, या वह संबंध कितना "परंपरागत वैवाहिक" जैसा दिखाई देता है।

7.2 इंद्र सरमा की सीमा: विवाहित पुरुष के साथ संबंध

इंद्रा सरमा बनाम वीकेवी सरमा (2013) में केंद्रीय प्रश्नों में से एक यह था कि यदि पुरुष पहले से विधि-सम्मत विवाह में बँधा है, तो क्या उसके साथ रहने वाली अन्य महिला को "विवाह-स्वरूप संबंध" की श्रेणी में लाया जा सकता है। न्यायालय ने सामान्यतः ऐसी स्थितियों को इस श्रेणी से बाहर रखने की प्रवृत्ति दिखाई, यह कहते हुए कि इस प्रकार का संबंध "कानूनी विवाह" से टकराव पैदा करता है और इसे समान स्तर पर नहीं रखा जा सकता।

लैंगिक न्याय की दृष्टि से यह स्थिति जटिल है। हिंसा, आर्थिक निर्भरता और भावनात्मक शोषण तो ऐसे संबंध में भी पूरी तरह उपस्थित हो सकते हैं; महिला कई बार पुरुष के वैवाहिक दर्जे से अनभिज्ञ भी हो सकती है या सामाजिक–आर्थिक निर्भरता के कारण संबंध से बाहर निकलने की स्थिति में नहीं रहती। ऐसी परिस्थिति में केवल इस आधार पर कि पुरुष पहले से विवाहित है, महिला को घरेलू हिंसा अधिनियम के संरक्षण से वंचित कर देना पीडब्लूडीवीए के "प्रभावी संरक्षण" (effective protection) के लक्ष्य से असंगत प्रतीत होता है। यह वह क्षेत्र है जहाँ विधायी स्पष्टता और समावेशी नीति की आवश्यकता गंभीर रूप से उभरती है।

7.3 निवास अधिकार की न्यायिक यात्रा और 'लिव-इन' संबंध

घरेलू हिंसा अधिनियम के तहत निवास अधिकार की वास्तविकता इस बात पर निर्भर करती है कि "साझा परिवार" की व्याख्या कितनी व्यापक या संकीर्ण ली जाती है। एसआर बत्रा बनाम तरुणा बत्रा (2007) में सर्वोच्च न्यायालय ने "साझा गृहस्थी" की व्याख्या अपेक्षाकृत संकीर्ण रूप में की, जिससे यह धारणा बनी कि पत्नी (या महिला साथी) ससुराल वालों की स्वामित्व वाली हर संपत्ति पर निवास अधिकार का दावा नहीं कर सकती (एसआर बत्रा बनाम तरुणा बत्रा, 2007)।

बाद में सतीश चंदर आहूजा बनाम स्नेहा आहूजा (2020) में न्यायालय ने इस दृष्टिकोण पर पुनर्विचार करते हुए "साझा परिवार" की अधिक व्यापक और प्रसंगानुकूल व्याख्या स्वीकार की, यह कहते हुए कि केवल स्वामित्व ही निर्णायक तत्व नहीं है, बल्कि यह देखना आवश्यक है कि महिला वास्तव में किस घर को अपना वैवाहिक/घरेलू निवास मानकर वहाँ रहती रही है।

'लिव-इन' महिला साथी के लिए यह न्यायिक यात्रा विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि सह-आवास प्रायः उसी घर में होता है जिसका स्वामित्व पुरुष या उसके परिवार के पास

होता है। यदि "साझा परिवार" की व्याख्या संकीर्ण रखी जाए, तो महिला के बेघर होने की आशंका बढ़ जाती है; जबकि व्यापक और व्यावहारिक व्याख्या पीडब्लूडीवीए के कल्याणकारी उद्देश्य अर्थात बेघर होने से सुरक्षा और सम्मानजनक आवास के अधिक अनुरूप है।

7.4 कल्याणकारी कानूनों की "संवैधानिक व्याख्या"

घरेलू हिंसा अधिनियम का लक्ष्य संविधान के समानता (अनुच्छेद 14), गैर-भेदभाव (अनुच्छेद 15) और गरिमा सहित जीवन के अधिकार (अनुच्छेद 21) को घरेलू क्षेत्र में वास्तविक रूप से लागू करना है। इसलिए, 'लिव-इन' महिला साथियों के मामले में पीडब्लूडीवीए की व्याख्या करते समय न्यायालयों को "संवैधानिक नैतिकता" (constitutional morality) और "मानवीय गरिमा" (human dignity) के मूल्यों को प्राथमिकता देनी चाहिए, न कि केवल समाज-आधारित नैतिकता या पारंपरिक पारिवारिक मॉडल को।

यह दृष्टि नवतेज सिंह जौहर बनाम भारत संघ (2018) और के.एस. पुट्टास्वामी बनाम के.एस. भारत संघ (2017) जैसे निर्णयों में प्रतिपादित संवैधानिक सिद्धांतों के अनुरूप है, जहाँ सर्वोच्च न्यायालय ने निजी स्वायत्तता, यौनिकता, निजता और गरिमा को मूल अधिकारों के रूप में पहचाना। यदि राज्य और न्यायालय वयस्कों की अंतरंग साझेदारी में केवल "नैतिक असहमति" के आधार पर हस्तक्षेप नहीं कर सकते, तो हिंसा-पीड़ित महिला को संरक्षण देने से केवल इस कारण इंकार करना कि उसका संबंध "परंपरागत विवाह" जैसा नहीं है, संवैधानिक दृष्टि से चुनौतीपूर्ण है।

8. तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य

कई न्याय-क्षेत्रों में घरेलू हिंसा अथवा अंतरंग साथी हिंसा से संबंधित विधायन वैवाहिक स्थिति से अपेक्षाकृत स्वतंत्र होता जा रहा है। कुछ देशों में संरक्षण कानूनों का ढांचा इस मान्यता पर आधारित है कि हिंसा का जोखिम मुख्यतः "अंतरंग साझेदारी, सह-निवास और शक्ति-असमानता" से जुड़ा है, न कि केवल औपचारिक वैवाहिक दर्जे से।

भारत का पीडब्लूडीवीए इस दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है, क्योंकि यह "घरेलू संबंध" की परिभाषा में विवाह के साथ-साथ "विवाह-स्वरूप संबंध" को भी शामिल करता है। किन्तु "विवाह की प्रकृति में संबंध" की संकीर्ण या नैतिकता-केन्द्रित व्याख्या कई बार इसे सीमित कर देती है। तुलनात्मक अनुभव यह संकेत देता है कि संरक्षण-कानूनों में प्राथमिक प्रश्न यह होना चाहिए कि

• क्या पक्षकारों के बीच वास्तविक सह-निवास/घरेलू साझेदारी रही है, और

• क्या वहाँ हिंसा, नियंत्रण या शोषण का जोखिम या अनुभव मौजूद है

न कि यह कि संबंध कितना "परंपरागत" या "कानूनी विवाह जैसा" दिखता है।

9. सुधार-सुझाव

1. विधायी स्पष्टता: "विवाह की प्रकृति में संबंध" की अवधारणा को विधायी स्तर पर अधिक स्पष्ट किया जाए, और 'सह-आवास + अंतरंग साझेदारी + कुछ हद तक स्थायित्व' को पर्याप्त मानते हुए अनावश्यक नैतिक कसौटियों (जैसे अनिवार्य सामाजिक प्रस्तुति या पारंपरिक परिवार मॉडल) को कमज़ोर किया जाए।

2. सुरक्षा-आधारित दृष्टिकोण: जहाँ महिला प्रथमदृष्टया घरेलू हिंसा या गंभीर जोखिम दिखा दे, वहाँ प्राथमिक स्तर पर संरक्षण और अंतरिम राहत को संबंध की औपचारिक वैधता से ऊपर रखा जाए। बाद की अवस्था में संबंध की प्रकृति का विस्तृत परीक्षण किया जा सकता है, पर प्रारम्भिक सुरक्षा में देरी घातक सिद्ध हो सकती है।

3. प्रमाण-सुविधा का विस्तार: सह-आवास और घरेलू संबंध के प्रमाण के लिए न्यायालय "समग्र परिस्थितियों" (circumstantial evidence) को व्यापक रूप से स्वीकार करें जैसे डिजिटल संवाद (संदेश, ई-मेल), संयुक्त तस्वीरें, साझा सामाजिक कार्यक्रमों के रिकॉर्ड, अस्पताल/स्कूल रिकॉर्ड, पड़ोसी या सहकर्मी की गवाही, आदि; केवल औपचारिक दस्तावेज़ (किरायानामा, नामांतरण) पर निर्भर न रहें।

4. संरक्षण अधिकारी की क्षमता-वृद्धि: संरक्षण अधिकारियों की नियुक्ति, प्रशिक्षण, संसाधन और जवाबदेही को सुदृढ़ किया जाए; सेवा प्रदाताओं और आश्रय-गृहों का नेटवर्क विस्तारित हो, ताकि 'लिव-इन' संबंधों में रहने वाली महिलाएँ भी, सामाजिक कलंक के बावजूद, सुरक्षित रूप से शिकायत और सहायता प्राप्त कर सकें।

5. समानता–गरिमा केन्द्रित न्यायिक प्रशिक्षण: मजिस्ट्रेट, पुलिस, अभियोजन और अन्य न्यायिक अधिकारी के लिए संवेदनशीलता प्रशिक्षण में 'लिव-इन' संबंधों की सामाजिक वास्तविकता, महिलाओं की सुरक्षा-रणनीतियाँ, और पीडब्लूडीवीए की संवैधानिक–कल्याणकारी व्याख्या को प्रमुख स्थान दिया जाए।

6. डेटा और अनुसंधान: डीवी अधिनियम के तहत दर्ज 'लिव-इन' मामलों, अंतरिम आदेशों, अंतिम निष्पत्तियों और अनुपालन की गुणवत्ता पर व्यवस्थित डेटा-संग्रह और स्वतंत्र मूल्यांकन किया जाए, ताकि भविष्य के विधायी एवं नीतिगत

सुधार साक्ष्य-आधारित हों और केवल अनुमान या नैतिक प्रतिक्रियाओं पर आधारित न हों।

Disclaimer/Publisher's Note: The views, findings, conclusions, and opinions expressed in articles published in this journal are exclusively those of the individual author(s) and contributor(s). The publisher and/or editorial team neither endorse nor necessarily share these viewpoints. The publisher and/or editors assume no responsibility or liability for any damage, harm, loss, or injury, whether personal or otherwise, that might occur from the use, interpretation, or reliance upon the information, methods, instructions, or products discussed in the journal's content.

****